विश्वकर्मायणम्

Facets of Indian History, Culture Literature, Art and Archaeology

Felicitation Volume in Honour of Prof. R. N. Vishwakarma

Chief Editor

Dr. SARITA SAHU

विश्वकर्मायणम्

(Facets of Indian History, Culture, Literature and Archaeology)

पुराविद् प्रो. आर. एन. विश्वकर्मा अभिनन्दनग्रंथ

प्रधान संपादक : डॉ. सरिता साहू

प्रथम संस्करण : 2025

मूल्य : ₹ 7500

© Chief Editor: Dr. Sarita Sahu

ISBN : 978-93-91952-75-4

आवरण : गंगा–यमुना–द्वारशाखा–देउर मंदिर, मल्हार

अभिनन्दनग्रंथ में प्रकाशित शोधलेखों, रचनाओं में उल्लिखित विषय–वस्तु एवं विचारों की मौलिकता, तथ्यों तथा निष्कर्षों आदि का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व संबंधित लेखकों एवं रचनाकारों का है। संपादक मंडल अथवा प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है।

प्रकाशक :

पाठक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स

E6-33c & 34 ग्राउंड फ्लोर, संगम विहार

नई दिल्ली–110062

मोबाइल : 9667766461, 9910469931

E-mail: pathakppd@gmail.com

टाईपसैटिंग

जी.आर.एस. ग्राफिक्स

दिल्ली

11. प्रो. (डॉ.) आर. एन. विश्वकर्मा –मेरी दृष्टि में — 97
– प्रो. प्रकाश महाडिक

12. My friend Prof. Vishwakarma — 99
— Prof. I. D. Tiwari

13. Historic Gentleman Prof. R. N. Vishwakarma — 102
— Prof. Suresh M. Cholke

14. प्रतिभाशाली शिक्षक एवं कर्मठ व्यक्तित्त्व के धनी – प्रो. विश्वकर्मा — 103
– डॉ. कृष्ण कुमार त्रिपाठी

15. प्रो. (डॉ.) आर. एन. विश्वकर्मा – एक आदर्श शिक्षक — 105
– प्रो. काशी नाथ तिवारी

16. मेरे अग्रज स्वरूप डॉ. रामनारायण विश्वकर्मा जी — 107
– प्रो. सुभाष चन्द्र शर्मा

17. प्रो. विश्वकर्मा : एक सरल एवं सहज व्यक्तित्त्व — 109
– प्रो. नागेश दुबे

18. जिज्ञासु एवं सहयोगी प्रो. (डॉ.) रामनारायण विश्वकर्मा जी — 111
– प्रो. रामायण प्रसाद गर्ग

19. प्रो. आर. एन. विश्वकर्मा जी – मेरी दृष्टि में — 115
– प्रो. राजन यादव

20. अविस्मरणीय मेधा एवं व्यक्तित्त्व के धनी डॉ. आर. एन. विश्वकर्मा — 118
– गणेश शंकर शर्मा

21. प्रो. आर. एन. विश्वकर्मा और मेरे आत्मीय संस्मरण — 120
– डॉ. प्रदीप शुक्ल

22. सहजता एवं विद्वता की प्रतिमूर्ति – प्रो. विश्वकर्मा — 122
– डॉ. टी. आर. रामटेके

23. छत्तीसगढ़ पुरातत्त्व, संस्कृति के पुरोधा प्रो. आर. एन विश्वकर्मा — 125
– डॉ. मोहन लाल चढ़ार

24. मेरे अग्रज तुल्य एवं पुराविद् प्रो. आर. एन. विश्वकर्मा — 127
– प्रो. किशोर कुमार अग्रवाल

25. मूर्तिकला एवं प्रतिमा विज्ञान के विशेषज्ञ : प्रो. विश्वकर्माजी — 128
– डॉ. मोना जैन

26. बहु आयामी व्यक्तित्त्व के धनी एवं विद्वान– प्रो. विश्वकर्माजी — 129
– कमला कान्त शुक्ल

27. संस्कृति एवं कला विशेषज्ञ – प्रो. आर. एन. विश्वकर्मा — 132
– प्रेम नारायण सिंह

28. पुरातत्त्वविद् एवं इतिहासकार – प्रो. (डॉ.) विश्वकर्माजी — 134
– डॉ. राकेश कुमार चंदेल

55. डाहलक्षेत्र के कलचुरि कालीन मंदिरों में प्रदर्शित शैवधर्म एवं धार्मिक समन्वय
– डॉ. नागेश दुबे

56. गुप्त–युगीन धार्मिक समन्वयन का पुरातत्त्वीय आधार 438
– डॉ. राघवेन्द्र प्रताप सिंह

57. राष्ट्रीय आंदोलन में गुरु अगमदास का योगदान 446
– डॉ. पी. डी. सोनकर

58. गुरु घासीदास का सतनाम पंथ : प्रसार एवं रावटी पद्धति 449
– डॉ. डी. एन. खुटे

59. छत्तीसगढ़ में गाणपत्य धर्म का विकास 459
– डॉ. शुभ्रा रजक

60. शंकर–पूर्व अद्वैत वेदान्त में प्रतिपादित गौड़पाद के अनुसार पारमार्थिक तत्व–चिन्तन 464
– डॉ. महेन्द्र नाथ सिंह एवं चरन सिंह

61. महायान बौद्ध दर्शन तथा अद्वैत वेदान्त का तुलनात्मक अध्ययन 468
– चरन सिंह

VIII. संगीत / नृत्य कला

62. उत्तर भारतीय संगीत के प्रमुख वायलिन वादकों के प्रस्तुतीकरण की विभिन्न शैलियाँ 471
– प्रो. (डॉ.) हिमांशु विश्वरूप

63. प्राचीन भारतीय नृत्यकला एवं वैदिक साहित्य 478
– डॉ. सुषमा देवी गुप्ता

64. भारतीय कला में संगीत : एक विहंगावलोकन 483
– डॉ. राकेश कुमार अहिरवार

65. राधागोविन्दसंगीतसार का नर्तनाध्याय – एक अनुशीलन 490
– डॉ. आकांक्षा विश्वकर्मा

66. ललित कलाओं का संगम– इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ 502
– चन्द्र प्रकाश गायकवाड़

67. प्राचीन मंदिरों में प्रदर्शित संगीत एवं नृत्यरत मूर्तियाँ (छत्तीसगढ़ के विशेष सन्दर्भ में) 505
– डॉ. आराधना चतुर्वेदी

IX. चित्रकला / लोक जीवन

68. मिथिला की लोक चित्रकला में नारी चित्रण 508
– डॉ. राखी कुमारी

69. बस्तर के जनजातियों की परम्पराएं एवं जन–चेतना 512
– डॉ. आनंद मूर्ति मिश्र एवं शारदा देवांगन,

70. बस्तर के दंतेवाड़ा में स्थित प्राचीन मंदिर का ऐतिहासिक वाद्य : रायगुड़ी 518
– डॉ. पुनीत पटेल

71. भुंजिया जनजाति में लाल बंगला का महत्त्व 521
– सुमन साहू एवं डॉ. प्रसन्न सहारे

डाहल क्षेत्र के कलचुरि कालीन मंदिरों में प्रदर्शित शैवधर्म एवं धार्मिक समन्वय

–प्रो. नागेश दुबे

पूर्वमध्यकालीन राजवंशों में कलचुरि राजवंश की अपनी अलग अस्मिता है। कलचुरियों का अभ्युदय दक्षिणी बुन्देलखण्ड के डाहल क्षेत्र में पूर्व मध्यकाल में हुआ। आठवीं शताब्दी ईस्वी के लगभग कलचुरियों की त्रिपुरी शाखा का उदय हुआ। इस कलचुरि शाखा को चेदि कलचुरि भी कहा जाता है। इनका आधिपत्य चेदि प्रदेश (बुन्देलखण्ड के डाहल क्षेत्र) पर रहा। डाहल क्षेत्र पर लगभग पाँच शताब्दियों तक कलचुरियों की इस शाखा ने शासन किया। कलचुरि अभिलेखों में 'त्रिपुरी' को चेदि कलचुरियों की राजधानी कहा गया है।[1] कलचुरियों की राजधानी त्रिपुरी प्राचीन डाहल (दक्षिणी बुन्देलखण्ड क्षेत्र) में स्थित थी।[2] डाहल क्षेत्र पर त्रिपुरी के कलचुरियों का विशेष प्रभाव रहा।[3] शंकरगण प्रथम, लक्ष्मणराज प्रथम, गांगेयदेव, कर्ण, गयाकर्ण, नरसिंहदेव, जयसिंहदेव, आदि शासकों के काल को कलचुरियों की समृद्धि का काल माना गया।[4] त्रैलोक्यमल्ल इस शाखा का अंतिम शासक था। तेरहवीं शताब्दी ई. के अंतिम भाग में इस शाखा का अंत हो गया। इस प्रकार लगभग 8वीं शताब्दी ई. से 13वीं शताब्दी ई. तक कलचुरि सत्ता डाहल क्षेत्र में विद्यमान रही।

डाहल क्षेत्र के कलचुरि कालीन मंदिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला में प्रदर्शित शैव धर्म

कलचुरि काल धार्मिक गतिविधियों के लिए विशेष रूप से विख्यात है। प्रायः सभी कलचुरि शासक शैव धर्म के अनुयायी थे। कलचुरि शासकों की शैव धर्म के प्रति आस्था की चर्चा अभिलेखों में की गई है। शैव धर्म, कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र में प्रमुखतः प्रचलित रहा। कलचुरि शासकों द्वारा निर्मित अनेक शैव मंदिर एवं मठों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। कलचुरि अभिलेखों में शैव धर्म को उनके द्वारा विशेष संरक्षण प्रदान किये जाने की जानकारी प्राप्त होती है। उन्होंने शैव आचार्यों को अपने राज्य में आमंत्रित कर बसाया एवं उन्हें संरक्षण दिया। इन शैव आचार्यों के निर्देशन में विशाल मठों एवं मंदिरों का निर्माण हुआ। इस हेतु अनेक ग्रामों का दान किया। उनके अभिलेख हमेशा 'ओम नमः शिवाय' से आरम्भ होते थे।[5] कलचुरि अभिलेखों में शिव, शंभू, नीलकंठ, धूर्जति वल्लभ, योगीश्वर, त्रयम्बक, सोमनाथ केदारदेव, हर, त्रिपुरारि तथा विल्वपाणी आदि नामों का सम्बोधन है।[6] शिलालेखों एवं ताम्रपत्रों में वे अपने आप को अन्य उपाधियों के साथ ही साथ 'डाहलाधिपति' एवं 'परममाहेश्वर' की उपाधि से अभिहित करते हैं।[7]

कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र के मंदिरों के शैलीगत विकास के आधार पर इनका कालक्रम निर्धारित किया गया है।[8] कलचुरि मंदिर स्थापत्य शिल्प के प्रारम्भिक स्वरूप के अंतर्गत विनायका (सागर), नचना के मंदिर (9वीं शताब्दी ई.) का निर्माण हुआ। लगभग 10वीं शताब्दी ई. कलचुरि मंदिर स्थापत्य के विकास का चरमोत्कर्ष का काल था। उनके अनुसार इसी कालखण्ड में नोहटा, कोडल, तेवर और बिलहरी के मंदिर निर्मित हुए। भेड़ाघाट का गौरीशंकर मंदिर अंतिम चरण में निर्मित हुआ।

डाहल क्षेत्र में त्रिपुरी, नोहटा, कोडल, छोटी देवरी, मढ़पिपरिया, बीना–बारहा, सागर, दमोह, धुवेला, पन्ना, छतरपुर, जबलपुर, भेड़ाघाट आदि स्थलों के मंदिर स्थलों एवं संग्रहालयों में बहुसंख्यक शैव धर्म से सम्बन्धित कलचुरि कालीन मूर्तियाँ दृष्टव्य हैं। ये शैव मूर्तियाँ कलचुरि नरेश के शासन काल में शैवधर्म के व्यापक प्रभाव तथा प्रसार को स्पष्ट करती हैं। इन मूर्तियों में शिव के नटराज, उमामहेश्वर, कल्याण, सुन्दर, रावणानुग्रह, अन्धकासुर वध आदि रूपों का चित्रण एवं शिल्पांकन किया गया है। संयुक्त प्रतिमाओं में उमामहेश्वर का शिल्पांकन सर्वाधिक हुआ है। इसके अतिरिक्त अर्द्धनारीश्वर तथा हरि–हर की प्रतिमाएँ निर्मित की गयी थीं। शिवपुत्र गणेश तथा कार्तिकेय की अनेक प्रतिमाएँ विविध स्थलों पर दृष्टव्य हैं। इससे प्रतीत होता है कि कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र में शिव के साथ ही शैवधर्म में पार्वती, कार्तिकेय तथा गणेश की उपासना प्रचलित थी।[9] अनेक शिव मंदिरों तथा मूर्तियों का निर्माण हुआ। दमोह, सागर, जबलपुर, छतरपुर आदि जिलों में कई स्थानों पर शिवलिंग तथा शैव मूर्तियाँ अनेक रूपों में प्राप्त हुई हैं।

कलचुरिकालीन डाहल क्षेत्र में धार्मिक समन्वय

कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र में सभी धर्मों के अनुयायी निवास करते थे। कलचुरि नरेश शैव धर्मावलम्बी थे, परन्तु उन्होंने धार्मिक समन्वय की नीति का पालन किया। प्राचीन भारत में धार्मिक इतिहास में कलचुरि वंश का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। कलचुरि नरेशों के उदार संरक्षण के फलस्वरूप उनके साम्राज्य में सभी धर्म समान रूप से फले–फूले और अनेक धार्मिक केंद्रों की स्थापना हुई। त्रिपुरी के कलचुरियों का अत्यन्त प्राचीन लेख लक्ष्मणराज प्रथम का सन् 841–42 ई. का है। उसके अवशिष्ट भाग से ज्ञात होता है कि उसमें आरम्भ में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की स्तुति थी[10], जो यह दर्शित करता है कि कलचुरि नरेश सभी देवताओं के प्रति आदर रखते थे। कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र में धार्मिक समन्वय स्थापित था।

कलचुरि काल में वैदिक यज्ञ के स्थान पर पुराणों और स्मृतियों में वर्णित धार्मिक अनुष्ठान किये जाने लगे। तीर्थयात्रा, अर्थदान और भूमिदान अधिक पुण्यदायक माने गये। जैनधर्म और बौद्धधर्म के प्रभाव के कारण पशुबलि की प्रथा लगभग समाप्त हो गई। मंदिर, शिक्षा के रूप में विकसित हुए। शैवधर्म के अनेक सम्प्रदायों की स्थापना इसी काल में हुई। वाममार्गी तांत्रिक सम्प्रदाय अधिक लोकप्रिय हुआ क्योंकि इस सम्प्रदाय में वर्ण और जाति के लिये स्थान नहीं था। त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) के साथ सूर्य की पूजा भी प्रचलित थी। समन्वित देव प्रतिमाओं की उपासना भी इसी काल में प्रारम्भ हुई। अर्द्धनारीश्वर आदि मिश्रित रूप को प्रदर्शित करने वाली अनेक प्रतिमाएँ धार्मिक सम्प्रदायों में सामंजस्य को प्रदर्शित करती हैं। आठवीं शताब्दी ईसवी के लगभग गणपति मंगलकारी देवता के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। डाहल क्षेत्र के कलचुरि शासकों ने विष्णु के विभिन्न अवतारों की उपासना की। शैवधर्म की विभिन्न शाखाओं का विकास इसी काल में हुआ।

स्थापत्य, मूर्तिकला और प्रतिमालक्षण की दृष्टि से कलचुरि शासकों का काल विविधतापूर्ण और क्षेत्रीय विशेषताओं वाला था। यद्यपि कलचुरि मंदिरों के उदाहरण अधिकांशतः सुरक्षित रूप में प्राप्त नहीं होते हैं, किन्तु विभिन्न पुरास्थलों एवं संग्रहालयों में इनकी मूर्तिकला के विपुल भण्डार उपलब्ध हैं, जिनमें देवमूर्तियों की प्रधानता है। लगभग 10वीं से 12वीं शताब्दी ई. के मध्य कलचुरि कला में भी अन्य क्षेत्रों की भाँति सर्वाधिक संख्या में मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण हुआ और राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टियों से यही कलचुरि इतिहास का श्रेष्ठतम काल भी था। देवमूर्तियों में सर्वाधिक लक्षणपरक विविधता भी इसी काल में परिलक्षित होती है।

कलचुरि शासक मुख्यतः शैव धर्मावलम्बी थे। इसी कारण इनके काल में शैव मंदिरों एवं शिव से सम्बंधित मूर्तियों की प्रधानता दिखाई देती है। कलचुरि शासक युवराजदेव प्रथम के काल में बने शैव मंदिरों में गुर्गी का मंदिर एवं मठ तथा गोलकी मठ मुख्य थे। रानी नोहला द्वारा निर्मित नोहलेश्वर मंदिर भी महत्त्वपूर्ण था। शैव मंदिरों के निर्माण की परम्परा कलचुरि शासन में अंतिम चरण तक चलती रही।

शैव मूर्तियों की प्रधानता के बाद भी भारत की धार्मिक–सांस्कृतिक समन्वय की परम्परा के अनुरूप कलचुरि शासकों के काल में विष्णु, शक्ति, गणेश, कार्तिकेय, ब्रह्मा, सूर्य, रेवन्त एवं संयुक्त मूर्तियाँ निर्मित की गयीं। कलचुरि क्षेत्रों से जैनधर्म से सम्बंधित तीर्थंकरों, यक्ष–यक्षियों एवं कुछ अन्य देवताओं की भी मूर्तियाँ मिली हैं। तुलनात्मक दृष्टि से बौद्ध मूर्तियों की संख्या लगभग नगण्य सी है। दशावतार फलकों पर बुद्ध के अंकन के साथ ही बुद्ध, बोधिसत्व एवं बौद्ध देवी तारा की कुछ मूर्तियाँ भेड़ाघाट के समीप तेवर से प्राप्त हुई हैं, जिनमें प्रतिमा लक्षण की दृष्टि से पारम्परिक विशेषताएं दिखाई देती है।[11]

कलचुरि कालीन मंदिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला की दृष्टि से तेवर, बिलहरी, भेड़ाघाट (जबलपुर), गुर्गी, चन्द्रेह, नोहटा (दमोह), रहली, बीना–बारहा (सागर) आदि महत्त्वपूर्ण पुरास्थल हैं।[12]

कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र की शैव मूर्तियाँ

कलचुरि कालीन शैव मूर्तियों में रावणानुग्रह स्वरूप के माध्यम से शिव की अनन्तकृपा और अन्धकारि एवं त्रिपुरान्तक स्वरूपों के माध्यम से आक्रामक चुनौतियों से जूझने की प्रेरणा और रक्षा के प्रति आश्वस्ति प्राप्त करना उनका अभीष्ट था।[13] शिव के विभिन्न रूपों में उमा–महेश्वर (कार्तिकेय एवं गणेश सहित– धुबेला संग्रहालय), शिव–पार्वती के चौपड़ खेलने से सम्बन्धित रूपांकन (रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर), वीणाधारी और त्रिमूर्ति मुख्य हैं। इनमें तेवर से प्राप्त 11वीं शताब्दी ई. का शिलापट (त्रिपुरी पट्ट) विशेष उल्लेखनीय है, जिसमें मध्य में अन्धकारि आकृति उकेरी है, जबकि अन्य पंक्तियों में द्वादश आदित्यों, पंच गणेश, शिवलिंग तथा अन्धकारि मूर्ति के ऊपर नन्दी पर आरूढ़ शिव–पार्वती और नीचे अंजलिमुद्रा में उपासकों एवं अन्य देवों की आकृतियाँ उकेरी हैं।[14] बिलहरी में दृष्टव्य एक मुखी, चतुर्मुजी एवं पंचमुखी शिवलिंग, कलचुरि काल में शिवलिंग उपासना की महत्ता सिद्ध करते हैं।

कलचुरि कला में उमा–महेश्वर–रावणानुग्रह मूर्ति का एक सुन्दर उदाहरण तेवर (11वीं शताब्दी ई.) से प्राप्त हुआ है (सम्प्रति जबलपुर के रानी दुर्गावती संग्रहालय में सुरक्षित है)। ऐसी मूर्तियों को रावणानुग्रह मूर्ति कहना अधिक उपयुक्त होगा। विभिन्न कलचुरि कालीन अभिलेखों में रावणानुग्रह स्वरूप का उल्लेख भी इसकी पुष्टि करता है। तेवर एवं कुछ अन्य स्थलों से प्राप्त रावणानुग्रह स्वरूप का भाव दर्शाने वाली उमा महेश्वर मूर्तियों में रावण के मुकुट के ऊपर गदर्भ शीर्ष का अंकन हुआ है।

कलचुरि कला में त्रिपुरान्तक मूर्तियों का अंकन भी प्रतीकात्मक रूप में हुआ हैं। कलचुरि कला में इस स्वरूप की लोकप्रियता प्रबोधशिव के 872 ई. के चन्द्रेह लेख से भी ज्ञात है, जिसमें शिव के त्रिपुर विजय तथा त्रिपुरारी स्वरूप को प्रदर्शित किया गया है। चन्देह लेख में त्रिपुर विजय के बाद शिव द्वारा ताण्डव नृत्य करने का संदर्भ भी मिलता है।

कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र की वैष्णव मूर्तियाँ

विष्णु की मूर्तियों में एकल विष्णु के अतिरिक्त अवतार स्वरूपों, लक्ष्मी–नारायण (तेवर, बिलहरी), योगासन विष्णु (दो हाथ योगमुद्रा में अन्य दो में चक्र और शंख), शेषशायी विष्णु (सामान्यतः शंख, चक्र, गदाधारी और नाभिपद्म पर ब्रह्मा की आकृति सहित) एवं बैकुण्ठ मूर्तियाँ मुख्य हैं। अवतार स्वरूपों में मुख्यतः नृवराह और स्थौण नरसिंह स्वरूपों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जो विष्णु के रक्षक देवता के रूप में उनके सामर्थ्य की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति से सम्बंधित हैं।

कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र की शाक्त मूर्तियाँ

शक्ति के विभिन्न रूपों में महिषमर्दिनी और चौंसठयोगिनी की मूर्तियाँ कलचुरि कला में विशेष लोकप्रिय थीं, जिनके उदाहरण लगभग सभी क्षेत्रों से मिलते हैं। इन देवियों के अतिरिक्त मनसा (भेड़ाघाट मार्ग पर), चामुण्डा,

तपस्विनी पार्वती तथा शिवलिंग एवं गणेश को करों में धारण करने वाली पार्वती की मूर्तियाँ भी कलचुरि क्षेत्र से उपलब्ध हैं, जो शाक्तधर्म की प्रचलित परम्परा की साक्षी हैं। कलचुरि कालीन मूर्तिकला में सप्तमातृकाओं के अतिरिक्त योगिनियों के साथ भी अधिकांशतः बालक का अंकन हुआ है, जो मातृशक्ति के प्रति उनकी आस्था को व्यक्त करता है।[15]

कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र की जैन मूर्तियाँ

कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र में जैन मूर्तियाँ सर्वाधिक संख्या में उपलब्ध हैं, जो दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बद्ध हैं। जैनधर्म में देवाधिदेव तीर्थंकरों या जिनों की सर्वोच्च प्रतिष्ठा के कारण अन्यत्र की भाँति कलचुरि कला में भी तीर्थंकरों की ही सर्वाधिक मूर्तियाँ बनीं, जिनके श्रेष्ठतम उदाहरण बिलहरी, तुमैन, तेवर, जैसे स्थलों में उपलब्ध हैं।

कलचुरि कला में ऋषभ पुत्र बाहुबली का अंकन भी लोकप्रिय था। बिलहरी की 11वीं शताब्दी ई. की एक मूर्ति में पारम्परिक शैली में बाहुबली के शरीर से लतावल्लरियों को लिपटे दिखाया गया है। बिलहरी के जैन मंदिर के द्वार–उत्तरंग पर मध्य में एवं एक छोर पर तीर्थंकरों का और दूसरे छोर पर बाहुबली की आकृति का अंकन हुआ है, जो तीर्थकारों के समान बाहुबली को प्रतिष्ठा प्रदान करने का प्रमाण है। जैन यक्षियों में अंबिका, प्राचीन परम्परा के मातृ पूजन तथा जैन परम्परा की बहुपुत्रिका यक्षी का परवर्ती रूपान्तरण हैं, जिसमें आम्रतुंबि और बालक यक्ष के मातृशक्ति तथा सिंह वाहन, अंकुश और पाश उनकी शक्ति के सूचक हैं।

कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र की बौद्ध मूर्तियाँ

कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र में बौद्धधर्म से सम्बंधित मूर्तियाँ भी निर्मित हुई। भेड़ाघाट के पास गोपालपुर में बौधिसत्व अवलोकितेश्वर की चार प्रतिमायें तथा एक प्रतिमा तारादेवी की प्राप्त हुई है। त्रिपुरी (तेवर) में बौधिसत्व व्रजाप्रस्थ की प्रतिमा मिली है। इस काल में विष्णु के दशावतारों में बुद्ध को सम्मिलित किया जाने लगा।[16] त्रिपुरी से बहुसंख्यक बौद्ध प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं।[17]

कलचुरि कालीन शैव प्रतिमाओं को अण्डाकार मुख–मण्डल, धुनषाकार भौंहे नुकीली नासिका, उभरी ठुड्डी आदि विशिष्टताओं से युक्त निर्मित किया गया है। देवी प्रतिमाओं में उन्नत उरोज, क्षीण कटिप्रदेश, मांसल उभार, समानुपातिक अंग–विन्यास कलचुरि मूर्तिकला की उत्कृष्टता की परिचायक हैं। कलचुरि काल के शिल्पी न केवल स्थापत्य कला–विधान में पारंगत थे, वरन् मूर्तिकला में भी वे पूर्ण निपुण थे।

धार्मिक समन्वय

कलचुरि नरेश, स्वयं शैवधर्म का पालन करते हुए भी धार्मिक समन्वय की नीति का पालन करते थे। विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र में फल–फूल रहे थे। डाहलक्षेत्र पर शासन करने वाले कलचुरि नरेशों ने विभिन्न धर्मों के संरक्षण के साथ, दान–दक्षिणा तथा प्रोत्साहन बिना किसी भेदभाव के दिया। डाहल क्षेत्र (त्रिपुरी) के कलचुरि शासक लक्ष्मणराज के अभिलेख में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की वन्दना की गई है। इससे प्रकट होता है कि कलचुरि नरेश सभी देवताओं का आदर करते थे। विष्णु देवता के अनेक देवालय त्रिपुरी के शासकों के द्वारा बनवाये गये थे। शंकरगण तृतीय स्वयं विष्णु उपासक था। उसने बड़गाँव के शंकरनारायण के नाम से विष्णु मंदिर बनवाया था। विष्णु, शिव, कार्तिकेय और आदित्य आदि पौराणिक देवता कलचुरि काल में अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गये थे। डाहल मण्डल में त्रिदेवों के साथ–साथ सूर्य देवता की उपासना के प्रमाण कलचुरि काल में मिलते हैं। शाक्तधर्म का भी विकास कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र में हुआ। योगिनी मंदिरों में स्थापित योगिनियाँ, योगिनी सम्प्रदाय के प्रभावशाली होने की पुष्टि करती हैं। सप्त मातृकाएँ भी इन्हीं योगिनियों के अंतर्गत आती थीं।

वास्तव में प्रधान योगिनियों की संस्था सात थी, जिन्हें सप्त मातृकाएं कहते थे। कालान्तर में इन्हें बढ़ाकर चौसठ कर दिया गया और यह चौसठ योगिनी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हो गया। कलचुरि काल में निर्मित भेड़ाघाट का चौसठ योगिनी मंदिर, योगिनी सम्प्रदाय की महत्ता को सिद्ध करता है। गणेश, कार्तिकेय, सूर्य तथा ब्रह्मा आदि देवता हिन्दू देवताओं की पूजा का भी प्रचलन रहा। परन्तु कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र में सभी नरेशों के काल में शिव की उपासना प्रधान देवता के रूप में होती थी।

कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र में अन्य धर्मों के साथ–साथ जैनधर्म तथा बौद्धधर्म भी जनसाधारण के मध्य प्रचलित थे। तेवर, बिलहरी, जबलपुर एवं बहुरीबन्द से जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं मिली हैं। कलचुरि मूर्तिकारों ने तीर्थकरों की प्रतिमाओं के साथ शासन–देवियों की प्रतिमाओं का भी सजीव अंकन किया है। स्पष्ट है कि कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र में जैनधर्म को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। कलचुरि काल में बौद्धधर्म की महायान शाखा में आस्था रखने वाले अनुयायियों के होने की पुष्टि होती है। तेवर व बिलहरी में अत्यन्त सुन्दर बौद्ध प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। डाहल क्षेत्र पर शासन करने वाले कलचुरि नरेशों की विभिन्न धर्मों में श्रद्धा और विश्वास था। कलचुरि नरेशों ने अपने अभिलेखों में त्रिदेवों, बौद्ध ज्ञानदेवता मंजुघोष आदि की वन्दना की है। कलचुरियों ने अपने वैवाहिक सम्बन्ध भी अन्य धर्मों के मानने वाले राजवंशों में किये।

कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र में धार्मिक समन्वय विद्यमान था। कलचुरि काल धार्मिक समन्वय का स्वर्ण युग था। अपने युग में धार्मिक एकता की स्थापना में कलचुरियों का विशिष्ट योगदान रहा। लगभग 9वीं शताब्दी ई. से 13वीं शताब्दी ईस्वी तक में डाहल क्षेत्र की मूर्तिकला एवं स्थापत्य के अंतर्गत अद्‌भुत चेतना आयी। मंदिर स्थापत्य के विभिन्न अंगों तथा मूर्तियों को श्रृंगारिक साँचे में ढाला गया। मंदिरों के सिरदल, द्वारशाखाओं, स्तम्भों तथा बाह्य भित्तियों को मूर्ति शिल्प से अलंकृत किया गया। मढ़पिपरिया, नोहटा, बिलहरी, त्रिपुरी, जबलपुर आदि स्थानों में निर्मित मंदिर मूर्तियाँ कलचुरि कालीन कला व स्थापत्य के उत्कृष्ट प्रमाण हैं। शैवधर्म के मंदिर व मूतियाँ प्रमुखता से निर्मित करायी गयी। मत्तमयूर सम्प्रदाय के आचार्यों ने शैव मंदिरों एवं मठों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। शैव मंदिर व मूर्तियों के निर्माण के साथ अन्य धर्मों यथा– वैष्णव, जैन व बौद्ध धर्म के भी मंदिर व मूर्तियाँ निर्मित करायीं गयीं। कलचुरि नरेश धर्म–सहिष्णु थे, उन्होंने बिना किसी भेदभाव के सभी धर्मों के प्रति समभाव रखा व उनके विकास हेतु प्रोत्साहन व सहयोग प्रदान किया। कलचुरि नरेश धार्मिक समन्वय के लिए सदा तत्पर रहते थे।

कलचुरि कालीन डाहल क्षेत्र में कलचुरि शासकों की धार्मिक समन्वय की नीति के कारण वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन तथा बौद्धधर्म से सम्बन्धित मंदिर तथा मूर्तियों का निर्माण उत्कृष्टता के साथ हुआ। प्रतिमाओं के निर्माण में शिल्प शास्त्रीय निर्देशों का पालन किया गया है। अभिलेखों व मुद्राओं से भी कलचुरि कालीन धार्मिक समन्वय के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

भारतीय स्थापत्य एवं कला के इतिहास में कलचुरि कालीन डाहलक्षेत्र के मंदिरों, मूर्तियों का विशेष महत्त्व रहा है। मंदिर सांस्कृतिक व धार्मिक गतिविधियाँ के केन्द्र थे। कलचुरि शासकों ने अपने काल में शैवधर्म को संरक्षण देने के साथ–साथ वैष्णव, शाक्त, जैन तथा बौद्धधर्म को संरक्षण ही नहीं दिया अपितु उन्हें संरक्षित करने में भी अपना योगदान दिया। वे धार्मिक समन्वय की नीति से ओत–प्रोत थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सुल्लेरे, सुशील कुमार तथा अग्रवाल, कन्हैया लाल, 'कलचुरियों की उत्पत्ति, नाम और प्राचीनता', कलचुरि राजवंश और उनका युग (सम्पा. राजकुमार शर्मा), दिल्ली, 1998, खण्ड 1, पृ. 18।
2. वही, पृ.39।

3. सोनी, राकेश, संगीत, नाट्य परम्परा और बुन्देलखण्ड, सागर, 2006, पृ. 39।

4. वही, पृ. 39–40।

5. वर्मा, भगवान सिंह, छत्तीसगढ़ का इतिहास, भोपाल, 2001, पृ. 39।

6. कृष्णदेव, उत्तर भारत के मंदिर, नई दिल्ली, 1989, पृ. 39।

7. कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम, (जिल्द–4), पृ. 406।

8. कृष्णदेव, टेम्पल्स ऑफ इण्डिया, दिल्ली, 1969, पृ. 50–51।

9. अवास्या, एम. एस., डाहल का सांस्कृतिक इतिहास, इंदौर, 2004, पृ. 61–62।

10. मिराशी, वी. वी., इनस्क्रिप्शन्स ऑफ द कलचुरि–चेदि एरा, अहमदाबाद, 1955, पृ. 37।

11. अली, रहमान, आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ द कलचुरीज, दिल्ली, 1980, पृ.172–73।

12. तिवारी, मारुति नंदन एवं कमल गिरि, 'प्रतिमा विज्ञान'; कलचुरि राजवंश और उनका युग, (संपा. राजकुमार शर्मा), खण्ड–2, नई दिल्ली, 1998, पृ. 348।

13. वही, पृ. 348।

14. वही, पृ. 349।

15. वही, पृ. 353।

16. राय, विजय शंकर, कलचुरि राजवंश का गौरवशाली इतिहास, जबलपुर, 1991 पृ.132–33।

17. शास्त्री, अजय मित्र, त्रिपुरी, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1971,

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्त्व विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, (म.प्र.)

"सुशील, धर्मात्मा और सब मित्र व प्राणियों पर दया करने वाले पात्र बनो। दुनिया की तमाम सम्पत्तियाँ ऐसे पात्र को अपना आश्रय बनाती हैं, जैसे पानी नीचे की ओर तथा धुंआ आसमान की ओर स्वाभाविक रूप से गति करता है।"

–विष्णु पुराण